127591 - अगर दिवालिया का धन उस के ऋण के भुगतान के लिए पर्याप्त न हो तो शेष राशि उस के ऊपर क़र्ज़ है, दिवालियापन के कारण वह समाप्त नहीं होगा

प्रश्न

अमेरिकी क़ानून में जिस आदमी पर ऋण होता है और वह उसके भुगतान में असमर्थ होता है तो उसे अदालत की तरफ से एक ज्ञापन मिलता है जिसे दिवालियापन का ज्ञापन कहा जाता है (यहाँ तक कि यदि ये ऋण जो उन के मालिकों के लिए हैं सूदखोरी के ही क्यों न हों), इस ज्ञापन में क़र्ज़ दार उन सभी ऋणों को लिखता है जो उनके लेनदार मालिकों के लिए हैं, साथ ही साथ हर क़र्ज़ दाता का अलग-अलग नाम लिखता है, तथा क़र्ज़ दार, क़र्ज़ दाता को एक दस्तावेज़ देता है जो उस आय को शामिल होता है जो वह अर्जित करता है, जो इस बात को इंगित करता है कि वह ऋण को चुकाने में असमर्थ है। इसी तरह क़र्ज़ दार उन सभी संपत्तियों और जायदाद को लिखता है जिन का वह मालिक होता है, और अदालत उन सभी संपत्तियों और जायदाद को आरक्षित कर लेती है, फिर उसे नीलामी में सब से अधिक कीमत में खरीदने वाले को बेच देती है। तथा क़र्ज़ दार इस प्रक्रिया से कुछ जायदाद को अलग कर सकता है, अर्थात वह बैंक को उसे आरक्षित करने के लिए प्रस्तुत न करे। इस के बाद नीलामी से प्राप्त पैसे को क़र्ज़ दाताओं की संख्या पर, प्राथमिकता के अनुसार प्रत्येक क़र्ज़ दाता के लिए आधिकारिक राशि के आधार पर वितरित कर दिया जाता है। अक्सर बार ऐसा होता है कि नीलामी से प्राप्त किया गया धन क़र्ज़ दाताओं की सभी बकाया राशि का भुगतान करने के लिए पर्याप्त नहीं होता है, किन्तु अदालत क़र्ज़ दार को सभी क़ानूनी ज़िम्मेदारियों से मुक्त कर देती है यहाँ तक कि वह अपने ऊपर किसी शेष राशि का भुगतान कर सके। पूर्वगामी बातों की रोशनी में, क्या मुसलमान क़र्ज़ दार पर उस क़र्ज़ या राशि का (सूद को छोड़ कर) भुगतान करना अनिवार्य है जिस का भुगतान अदालत नहीं कर सकी है, यहाँ तक कि अगर वह संपत्ति और जायदाद जिसे क़र्ज़ चुकाने के लिए लिया गया है, दुकान या बाज़ार के रूप् में हो और उस की क़ीमत उस से कहीं बढ़ कर हो जो नीलामी से प्राप्त हुई है ? और अगर इस दुकान को अदालत के हवाले कर दिया जाता है तो क्या वह सभी ऋणों का उनके अधिकारियों को भुगतान करने के लिए अपने पास पर्याप्त धन बाक़ी रखेगा ? और किसी भी हालत में, प्रत्येक क़र्ज़ दार निश्चित रूप से यह जानता है कि जब अदालत के द्वारा उपर्युक्त दिवालियापन के घोषण की कार्रवाई संपन्न होगी तो यही एक मात्र उस की आय होगी।

विस्तृत उत्तर

हर प्रकार की प्रशंसा और गुणगान केवल अल्लाह तआला के लिए योग्य है।.

हर प्रकार की प्रशंसा और स्तुति अल्लाह के लिए योग्य है।

बेहतर होगा कि हम इस्लामी धर्म शास्त्र में हज्र (प्रतिबंध लगाने) के कुछ प्रावधानों को जान लें, फिर प्रश्न में वर्णित मुद्दे का उल्लेख करें।

शब्दावली में इफ्लास (दिवालियापन) का अर्थ यह है कि : आदमी के ऊपर जो क़र्ज़अनिवार्य है वह उस के धन से अधिक हो।

जब क़र्ज़ दार की यह हालत हो जाये, और क़र्ज़के भुगतान का समय हो जाये (अर्थात क़र्ज़आस्थगित न हो) और लेनदार (क़र्ज़ दाता) लोग शासक से उस पर प्रतिबंध लगाने की मांग करें, तो हाकिम के लिए अनिवार्य हो जाता है कि उस की संपत्ति पर प्रतिबंध लगा दे, और उसे उस में तसर्रुफ करने से रोक दे, और इस हज्र (प्रतिबंध) पर कई अहकाम निष्कर्षित होते हैं :

1- क़र्ज़ दार को उसकी संपत्ति में तसर्रुफ करने से रोक देना।

2- इस धन से क़र्ज़ दाताओं के अधिकारों का संबंधित होना।

3- जो क़र्ज़ दार दिवालिया के पास हूबहू अपना माल पा जाये तो वह दूसरे क़र्ज़ दाताओं से उस धन का अधिक हक़दार है, जैसेकि उस ने उसे कोई क़र्ज़दिया हो, या क़िस्तों पर कोई सामान बेचा हो, क्योंकि नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का फरमान है : "जिस ने किसी दिवालिया आदमी या इंसान के पास बेऐनिहि (हूबहू) अपना धन पा लिया तो वह उस का अपने अलावा दूसरे से अधिक हक़दार है।" (सहीह बुखारी हदीस संख्या : 2402, सहीह मुस्लिम हदीस संख्या : 1559)

4- हाकिम के लिए जाइज़ है कि उस की संपत्ति को बेच दे और क़र्ज़ दाताओं को उनके अधिकार दे दे।

इस का प्रमाण यह है कि : मुआज़ बिन जबल रज़ियल्लाहु अन्हु पर ऋण था, तो उन के क़र्ज़ दाताओं ने इस बारे में रसूल सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से बात की, तो आप ने उन पर प्रतिबंध लगा दिया और उनके धन को बेच दिया। इस हदीस को बैहक़ी और हाकिम ने रिवायत किया है, और यह एक मुख्तलफ फीह हदीस है (अर्थात जिसके बारे में मतभेद है), इब्ने कसीर ने "इर्शादुल फक़ीह" (2/48) में इसे सहीह कहा है, और अल्बानी ने "इर्वाउल गलील" (हदीस संख्या : 1435) में इसे ज़ईफ क़रार दिया है।

तथा दिवालिया के लिए उस के धन से : उस की आवश्यकता की चीज़ों को छोड़ दिया जायेगा जिन से वह उपेक्षा नहीं कर सकता जैसे कि : कपड़े, किताबें, घर जिस में वह रहता है, कारीगरी की मशीनें, आवश्यक जीविका, तिजारत का मूल धन ... आदि।

तथा इन चीज़ों में से जो उसकी ज़रूरत से अधिक है उसे ले लिया जायेगा, और बिना अधिकता (बाहुल्य) के उस के लिए

जो पर्याप्त है उसे छोड़ दिया जायेगा।

कुछ विद्वान (इमाम मालिक और शाफेई) इस बात की ओर गये हैं कि अगर वह ऐसे घर में निवास करता है जिस का वह मालिक है, तो वह घर उस से लेकर बेच दिया जायेगा और उस के रहने के लिए एक घर किराये पर ले लिया जायेगा।

जब हाकिम उस की संपत्ति को बेचेगा, तो उस के क़र्ज़ दाताओं पर बराबरी के साथ नहीं वितरित करेगा, बल्कि उन के ऋण के अनुपात के अनुसार वितरित करेगा, अगर उन में से किसी का एक हज़ार ऋण है और दूसरे का पाँच सौ तो दोनों के बीच धन को बांट दिया जायेगा : एक हज़ार वाले को: दो तिहाई, और पाँच सौ वाले को : एक तिहाई।

हाफिज़ इब्ने हजर फत्हुल बारी में कहते हैं :

"जमहूर उलमा (विद्वानों की बहुमत) इस बात की ओर गये हैं कि जिस आदमी का दिवाला निकल जाये तो हाकिम को चाहिए कि उस पर उस की संपत्ति में प्रतिबंध लगा दे यहाँ तक कि उसे बेच कर उस से प्राप्त पैसों को उस के क़र्ज़ दाताओं के बीच उन के क़र्ज़के अनुपात के अनुसार वितरित कर दे।" (इब्ने हजर की बात समाप्त हुई)।

यह उस स्थिति में है जब वह माल सभी क़र्ज के लिए पर्याप्त न हो, अगर वह पर्याप्त है तो प्रत्येक क़र्ज़ दाता बिना अधिकता के अपना अधिकार ले लेगा, फिर -अगर कुछ बाक़ी बचता है तो- बक़ाया राशि दिवालिया को लौटा देगा, क्योंकि यह उसी का अधिकार है।

अगर उसका धन संपूर्ण ऋण के भुगतान के लिए पर्याप्त नहीं है, तो मौजूद धन को क़र्ज़ दाताओं पर वितरित कर दिया जायेगा, और उन के शेष अधिकार उस के ऊपर क़र्ज़बाक़ी रहेंगे, जब भी वह उन्हें चुकाने पर सक्षम होगा उस पर (बक़ाया) क़र्ज़का भुगतान करना अनिवार्य हो जायेगा।

देखिये : "अल-मुगनी" (4/265-266), "अल-मजमूअ" (13/278-284) (मुद्रण दारूल फिक्र), "अल-मबसूत" (24/ 156-166) "फत्हुल बारी" (5/66) (मुद्रण दारूल मा'रिफा - बैरूत, 1379) "अल-मौसूआ अल-फिक्हिय्या" (5/246, 301-322), "अश्शर्हुल मुम्ति" (9/78-81).

इस आधार पर, प्रश्न करने वाले का यह कहना कि : क्या मुसलमान क़र्ज़ दार पर उस क़र्ज़ या राशि का भुगतान करना अनिवार्य है जिस का अदालत भुगतान नही कर सकी है ?

तो उस का उत्तर यह है कि : जी हाँ, वह उस के ज़िम्मे क़र्ज़बाकी रहेगा यहाँ तक कि वह उस का भुगतान करने पर सक्षम हो जाये।

इब्ने क़ुदामा रहिमहुल्लाह "अल-मुगनी" (6/581) में कहते हैं :

"जब दिवालिया के धन को बांट दिया जाये और उस के ऊपर कुछ क़र्ज़बाक़ी रह जाये, और उसक पास कोई कारीगरी (व्यवसाय) हो, तो क्या हाकिम उसे अपने आप को किराये पर देने पर मजबूर करेगा ताकि वह अपने क़र्ज की अदायगी कर सके ? इस के बारे में दो मत हैं ..." (इब्ने का कुदामा की बात समाप्त हुई).

फिर उन्हों ने दोनों कथनों का उनके प्रमाणों सहित उल्लेख किया है, और उन में से किसी के राजेह (श्रेष्ठ) होने को स्पष्ट नहीं किया है, किन्तु उनकी बात से प्रत्यक्ष होता है कि वह इस कथन की ओर झुकाव रखते हैं कि हाकिम उसे काम करने पर मजबूर करेगा ताकि वह अपने क़र्ज़का भुगतान कर सके।

दोनों कथनों के आधार पर : इस से यह पता चलता है कि क़र्ज़ दाताओं का बचा हुआ अधिकार उस के ज़िम्मे लगा रहता है।

फिर इब्ने क़ुदामा (6/582) कहते हैं :

"यदि उस के ऊपर से प्रतिबंध हटा लिया जाये (अर्थात उस के धन को बेचने के बाद) तो किसी भी व्यक्ति के लिए उस से मांग करने और उसके पीछे लगने का अधिकार नहीं है यहाँ तक कि वह किसी धन का मालिक हो जाये ..."।

इस से भी पता चलता है कि क़र्ज़ दाताओं का जो हक़ बाकी रह गया है वह समाप्त नहीं होगा, बल्कि उस के ऊपर उधाररहेगा।

तथा प्रश्न करने वाले का यह कहना कि : यहाँ तक कि अगर वह संपत्ति और जायदाद जिसे क़र्ज़चुकाने के लिए लिया गया है एक दुकान या बाज़ार के रूप में हो और उसकी क़ीमत नीलामी से प्राप्त धन से कहीं बढ़ कर हो ?

तो इसका उत्तर यह है कि :

हाकिम पर अनिवार्य यह है कि वह दिवालिया की संपत्ति को उसी के समान क़ीमत पर ही बेचे, उस से कम मूल्य पर न बेचे।

देखिये : "अल-मौसूआ अल-फिक़्हिय्या" (5/318).

जबकि यह मामला गैर इस्लामी देश में देखा जा रहा है, तो यह बात स्वभाविक है कि उन के अपने क़ानून और व्यवस्था हों जिन की ओर वे फैसला के लिए जाते हो और उन के द्वारा वे फैसला करते हों, और वे सर्वशक्तिमान अल्लाह के द्वारा निर्धारित किए गए क़ानून के विरूद्ध हों।

अत : मुसलमान के लिए उचित नहीं है कि वह उन देशों में निवास करने में सुस्ती और काहिली से काम ले, जब तक कि वह ऐसा करने के लिए बाध्य (मजबूर) न हो, क्योंकि वह उन कानूनों के अधीन होगा, वह उसे चाहे या इंकार करे।

चेतावनी :

सूद से संबंधित ऋण् को चुकाना जाइज़ नहीं है, उस पर केवल मूल संपत्ति का भुगतान करना वाजिब है, सिवाय इस के कि उसे भुगतान करने पर मजबूर किया जाये और कारावास की धमकी दी जाये, तो उस पर कोई हरज (आपत्ति) की बात नहीं है, और वह मजबूर समझा जायेगा, लेकिन उस के लिए वाजिब है कि सूद पर क़र्ज़ लेने से वह अल्लाह के सामने तौबा करे।

और अल्लाह तआला ही सर्वश्रेष्ठ ज्ञान रखता है।